THE TIMES OF INDIA

Date:15-07-22

Global Rupee

Allowing rupees to settle foreign trades is a good move. It can have long-term benefits

TOI Editorials

RBI this week initiated measures to allow rupee settlement of cross-border trade deals. It's still work-in-progress but the essence is that Indian banks can act as custodians of funds in international transactions settled in rupees. These measures need to be located in the context of the immediate need to cope with developments in the foreign currency market and the long-term opportunities present in the gradual shift in the currency composition of global foreign exchange reserves.

Global commodity prices have dipped since the level witnessed in May. For India, this augurs well. The average price of an Indian basket of crude in July was $106, about 9% below June. However, it has been partially offset by the weakening of the rupee against the dollar on account of global reallocation of capital after prominent central banks started increasing interest rates. Since January, foreign portfolio outflows have crossed $30 billion. In addition to market intervention, RBI adopted other measures to cope with the rupee depreciation. Last week, it liberalised forex inflows. Now, it's provided a window to settle trades in rupees.This window serves two purposes. Right now, it helps India grab opportunities such as discounts on Russian oil. For example, India imported $1. 3 billion of Russian crude in April, making it the fourth largest source. A year ago, there were no crude imports from Russia. Rupee settlement allows Indian firms to circumvent Western sanctions that bite because of their dominance over the global financial system. Long-term, there are likely to be more opportunities to internationalise the rupee on account of a shift in the composition of global foreign exchange reserves. The US dollar's hold is slowly receding – it's about 59% now from a level of 70% two decades ago.

This trend will continue as countries de-risk holdings. To illustrate, the Bank of Israel plans to reallocate a part of its US dollar holdings to currencies of Australia, Canada, China and Japan. India needs to seize the opportunity ahead. GoI now needs to complement the effort initiated by RBI through relevant policy tweaks.

THE HINDU

Date:15-07-22

Bridging the gap

India needs to help women get greater access to jobs and resources

Editorial

The struggle to achieve gender equality and bridge the gap between men and women is a long and difficult one. India has got another opportunity to do much better for half of its population with the Global Gender Gap Index for 2022, released by the World Economic Forum on Wednesday, placing it at 135 out of 146 countries. But the new data — India's ranking in 2021 was 140 out of 156 countries — hardly brings cheer as India has fared the worst in at least one of the parameters — 'health and survival' — in which it took the last spot. The Global Gender Gap Index benchmarks the current state and evolution of gender parity across four dimensions: economic participation and opportunity; educational attainment; health and survival, and political empowerment. India ranks poorly among its neighbours and is behind Bangladesh, Nepal, Sri Lanka, the Maldives and Bhutan. Only Iran, Pakistan and Afghanistan perform worse than India in the region. In 2022, coming on the back of a pandemic, war and economic crises, the global gender gap has been closed by 68.1%, which means at the current rate of progress it will take 132 years to reach full parity. Among all the regions, it will take the longest for South Asia to reach the target — 197 years — "due to a broad stagnation in gender parity scores ... in the region".

There have been enough numbers from the ground to indicate that India, with a female population of approximately 66 crore, has faltered on the road to gender parity. In the pandemic years, as incomes shrank, women faced hurdles on every front, from food, health, and education for the girl child to jobs. The latest NFHS data (2019-2021) show that 57% of women (15-49 age bracket) are anaemic, up from 53% in 2015-16; though 88.7% of married women participate in key household decisions, only 25.4% of women, aged 15-49 years, who worked in the last 12 months (2019-2021), were paid in cash. Women having a bank account or savings account that they themselves use have increased to 78.6%, with schemes such as the Pradhan Mantri Jan Dhan Yojana helping, but women participation in the labour force has shrunk. According to Centre for Monitoring Indian Economy (CMIE) data, in 2016-17 about 15% women were employed or looking for jobs; this metric dipped to 9.2% in 2021-22. The best way to improve India's abysmal ranking is to do it right by women. For that, it is imperative to increase

representation of women in leadership positions at all levels so that women get greater access to jobs and resources. It is up to the Government to move beyond tokenisms and help women overcome staggering economic and social barriers.

दैनिक भास्कर

Date:15-07-22

किसानों की उदासीनता से खाद्य संकट पैदा न हो जाए

संपादकीय

कहां तो भारत सरकार किसानों को धान-गेहूं की फसल से हटाकर तिलहन और दलहन को ओर मोड़ना चाहती थी और कहां असामान्य बारिश से पिछले साल के अब तक के काल के मुकाबले इस वर्ष न केवल धान का रकबा 24% घटा है बल्कि तिलहन की बुवाई भी 20% कम हुई है। सेंट्रल पूल में गेहूं की इस साल भारी कमी को देखते हुए केंद्र ने तमाम अनाज वितरण योजनाओं के कोटे में कटौती की है, जिससे यूपी और गुजरात जैसे राज्य परेशान हैं। केंद्र इसकी भरपाई चावल से कर रही है। उसे आशा थी कि इस बार धान की रिकॉर्ड पैदावार होगी, जिससे सेंट्रल पूल में भी ज्यादा चावल होगा। सरकार इस पर भी तैयार थी कि अगर किसान वैज्ञानिकों की राय मानते हुए धान की जगह तिलहन की बुवाई करता है तो देश को महंगे खाद्य तेल का आयात नहीं या कम करना होगा। लेकिन कम बारिश से न तो धान की खेती में इजाफा हुआ, न ही किसानों ने तिलहन बोने में रुचि दिखाई। अगर अक्टूबर से शुरू होने वाली रबी की फसल में भी किसानों की दिलचस्पी कम हुई तो खाद्य संकट की स्थिति बन सकती है क्योंकि पूरे यूरोप और ब्राजील सहित अफ्रीका और एशिया के कुछ भागों में अनाज की भारी कमी होने लगी है। धान और तिलहन पर किसानों की उदासीनता देश के योजनाकारों को कई और संदेश भी देती है।

Date:15-07-22

सोशल मीडिया के दौर में न्यायाधीश और अदालतें

विराग गुप्ता, (लेखक और वकील)

जजों ने पुलिस, सीबीआई, प्रशासन और सरकारों के खिलाफ अतीत में कई बार सख्त कमेंट्स किए हैं, लेकिन नूपुर शर्मा से उठा बवंडर थमने का नाम नहीं ले रहा। रिटायर्ड नौकरशाह और जजों के जवाबी पत्र-व्यवहार के बीच सोशल मीडिया में भी जजों और न्यायपालिका के खिलाफ गुस्से का इजहार हो रहा है। जजों की आलोचना करने वालों के खिलाफ अवमानना की कार्यवाही शुरू करने की मांग को अटार्नी जनरल ने खारिज कर दिया है। इससे साफ है कि नूपुर मामले में जजों के कमेंट्स गलत थे और उनका बचाव नहीं हो सकता। विवाद बढ़ने के बाद आत्मावलोकन और भूलसुधार के बजाय

एक जज ने सोशल मीडिया के खिलाफ ही सख्त कानून बनाने की मांग कर दी। मद्रास हाईकोर्ट ने चुनाव आयोग के खिलाफ सख्त टिप्पणियां की थीं। सुप्रीम कोर्ट के जज चंद्रचूड़ ने पिछले साल उन्हें निरस्त करते हुए लिखित फैसले में कहा था कि जजों को बेवजह की टिप्पणियों से बचना चाहिए। इसलिए नूपुर के खिलाफ एकतरफा कमेंट्स को रद्द करने के साथ सभी एफआईआर को एक साथ क्लब करने के लिए रिव्यू याचिका में सुप्रीम कोर्ट को आदेश पारित करना चाहिए। ऐसा नहीं होने पर जजों की टिप्पणियों की आड़ में अराजकतावादी ताकतों के हाथ मजबूत हो सकते हैं। वीआईपी मामलों के निपटारे पर फोकस के बजाय निम्नलिखित चार कानूनी बातों पर अमल हो तो जजों के खिलाफ हो रहे दुष्प्रचार की कमर टूट सकती है।

पहला, न्यायिक पिरामिड में जिला अदालत, हाईकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट की भूमिका व कार्यक्षेत्र निर्धारित हैं। जमानत जैसे मामलों पर ट्रायल कोर्ट में सुनवाई होनी चाहिए। लेकिन सेलिब्रिटीज और सीनियर एडवोकेट्स के मामलों में सुप्रीम कोर्ट में ताबड़तोड़ सुनवाई से न्यायिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो रही है। संविधान के अनुसार किसी को बेवजह जेल में नहीं रखा जा सकता। उसके बावजूद नेताओं के इशारे पर एफआईआर और लम्बी हिरासत से कानून की धाराएं और लोगों के अधिकार दम तोड़ रहे हैं। सुप्रीम कोर्ट की अन्य बेंच ने जमानत के सिस्टम को दुरुस्त करने के लिए नई कानूनी संहिता की जरूरत पर जोर दिया है। नई संहिता बनाने से पहले फिजूल की एफआईआर के सिस्टम के नाश के लिए अनुच्छेद 142 के तहत सुप्रीम कोर्ट को जरूरी आदेश पारित करना चाहिए।

दूसरा, संविधान के अनुच्छेद-20 (2) के तहत एक ही मामले में दो बार ट्रायल नहीं हो सकता और इसलिए एक मामले में अनेक एफआईआर असंवैधानिक है। नूपुर जैसे सैकड़ों मामलों में मनमाने तरीके से दर्ज एफआईआर के खिलाफ पुलिस अधिकारियों पर अवमानना का मामला चले तो एफआईआर की सियासी कबड्डी का खेल कम हो जाएगा। तीसरा, अदालती फैसलों की आलोचना लोगों का संवैधानिक अधिकार है। लेकिन जजों के खिलाफ सोशल मीडिया में ट्रोलिंग या विषैले अभियान को न्यायिक प्रशासन में घातक हस्तक्षेप मानना चाहिए। संविधान के तहत सभी बराबर हैं, इसलिए सोशल मीडिया से जजों को बचाने के लिए विशेष कानून नहीं बन सकता। सोशल मीडिया के नियमन से जुड़े मामले सुप्रीम कोर्ट में 2019 से लम्बित हैं। इन पर फैसला हो तो जजों के साथ पूरे देश को राहत मिल सकती है।

चौथा, सुप्रीम कोर्ट में फाइलिंग, मेंशनिंग और लिस्टिंग आदि के मनमाने सिस्टम पर सालों से बहस चल रही है, जिस पर कुछ जजों ने चार साल पहले प्रेस-कांफ्रेंस की थी। अभी वेकेशन बेंच के जजों के न्यायिक आदेश के बावजूद रजिस्ट्री ने कुछ मुकदमों की लिस्टिंग नहीं की। हाई-प्रोफाइल मामलों में याचिका दायर होने से पहले ही सुनवाई की तारीख मुकर्रर हो गई। वहीं आम जनता के खाते में सुनवाई की लम्बी तारीख ही आ रही है। कानूनों की कमी और सोशल मीडिया के दुरुपयोग पर आंसू बहाने के बजाय अदालती सिस्टम को जवाबदेह व पारदर्शी बनाने की जरूरत है। न्याय होने के साथ दिखना भी चाहिए। लॉकडाउन के दौरान सोशल मीडिया के माध्यम से सीधी रिपोर्टिंग से जनता में अदालती कार्यवाही के प्रति दिलचस्पी बढ़ी है। चीफ जस्टिस रमना ने रिटायरमेंट के पहले सुप्रीम कोर्ट की कार्यवाही के सीधे प्रसारण को शुरू करने की बात कही है। इससे चार साल पुराने फैसले पर अमल होगा, लेकिन जवाबदेही भी बढ़ेगी। भविष्य में उपद्रवी लोग न्यायिक व्यवस्था को तहस-नहस न करें, इसके लिए व्यक्ति के बजाय संविधान को केंद्र में रखकर जल्द न्याय देने के सिस्टम पर अमल करना जरूरी है।

दैनिक जागरण

Date:15-07-22

और बढ़ा भारत का कद

संपादकीय

क्वाड सरीखे एक और वैश्विक संगठन आइ-2 यू-2 के पहले शिखर सम्मेलन में भारत की भागीदारी अंतरराष्ट्रीय मंच पर देश के बढ़ते कद का परिचायक ही है। भारत की सदस्यता वाले इस समूह ने एक बार फिर यही रेखांकित किया कि विश्व के प्रमुख देश अंतरराष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय चुनौतियों का सामना करने में नई दिल्ली का साथ लेना आवश्यक समझने लगे हैं। भले ही आइ-2 यू-2 की ओर से जारी घोषणा पत्र में खाद्य सुरक्षा और स्वच्छ ऊर्जा के साथ आर्थिक सहयोग पर अधिक ध्यान केंद्रित किया गया हो, लेकिन इस संगठन का एक उद्देश्य चीन की ओर से पेश की जा रही चुनौतियों का सामना करना भी है। कुछ समय पहले जब भारत, इजरायल, अमेरिका एवं संयुक्त अरब अमीरात की सदस्यता वाले इस संगठन के प्रतिनिधियों की बैठक हुई थी, तब उसमें समुद्री सुरक्षा पर भी बात की गई थी और यह किसी से छिपा नहीं कि चीन समुद्री सुरक्षा के लिए खतरा बन गया है। इस पर हैरानी नहीं कि आइ-2 यू-2 को पश्चिमी एशिया के क्वाड की संज्ञा दी जा रही है।

विश्व मंच पर भारत की महत्ता किस तरह बढ़ती जा रही है, इसका एक और प्रमाण हाल में तब मिला था, जब पिछले दिनों जर्मनी में आयोजित जी-7 सम्मेलन में भारतीय प्रधानमंत्री को आमंत्रित किया गया था। यद्यपि भारत धनी देशों के इस विशिष्ट समूह का सदस्य नहीं, लेकिन उसे बीते कुछ वर्षों से लगातार आमंत्रित किया जा रहा है। इसका प्रमुख कारण यही है कि दुनिया के सबसे अमीर और औद्योगिक देश भारत को एक उभरती हुई ताकत के रूप में देखने के साथ यह भी समझ रहे हैं कि उसका साथ लिए बगैर उनका काम चलने वाला नहीं है। सच तो यह है कि विदेश नीति के मोर्चे पर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की सक्रियता और सजगता ने भारत को एक उभरती हुई वैश्विक शक्ति के रूप में स्थापित सा कर दिया है। विडंबना यह है कि इसके बाद भी संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में भारत को स्थायी सदस्यता देने में अनावश्यक देरी हो रही है। यह अच्छा हुआ कि भारत ने एक बार फिर सुरक्षा परिषद में सुधार के लिए जारी प्रयासों की निरर्थकता को लेकर अपनी अप्रसन्नता प्रकट की। भारत ने यह कटाक्ष करके सुरक्षा परिषद के सुधार में बाधक बने उन देशों को आईना दिखाने का ही काम किया कि बिना किसी निष्कर्ष वाली वार्ता को तो और 75 वर्षों तक जारी रखा जा सकता है। यह विचित्र है कि प्रमुख देश यह तो मान रहे हैं कि सुरक्षा परिषद में सुधार आवश्यक हो चुके हैं, लेकिन वे उन प्रयासों को गति देने के लिए तैयार नहीं, जिनसे अपेक्षित सुधारों की दिशा में आगे बढ़ा जा सके।

जनसत्ता

Date:15-07-22

मुफ्त बांटने की राजनीति का अर्थ

पीएस बोहरा

आर्थिक विकास की नीतियां तब अपने लक्ष्य से भटक जाती हैं जब उनमें राजनीतिक सोच और उसके फायदे हावी हो जाते हैं। अंतत: गरीब तबके का व्यक्ति इससे विकास की मुख्यधारा से छिटक जाता है और धीरे-धीरे आर्थिक स्थितियां विपरीत होने लगती हैं। पिछले कुछ वर्षों से आर्थिक विकास के मोर्चे पर एक नई राजनीतिक सोच पैदा हुई है। अब लोकलुभावन विकास को जन कल्याणकारी योजनाओं द्वारा हर सत्तापक्ष भुनाना चाहता है, जिसका वास्तविक आधार कुछ वस्तुओं और सेवाओं को 'मुफ्त बांटना' हो गया है। मुफ्त बांटने की यह राजनीतिक सोच आर्थिक बदहाली को आमंत्रण दे रही है।

यह भी सच्चाई है कि हमारा लोकतंत्र जन कल्याण उन्मुख है। उसका उद्देश्य समाज का आर्थिक विकास करना तथा उसका अधिकतम फायदा गरीब तबके को उपलब्ध करवाना है। इसलिए मुफ्त बांटने की सोच इस संदर्भ में जायज भी दिखती है। वस्तुओं और सेवाओं को कम मूल्य या रियायती दरों पर उपलब्ध करवाना समाज के हित में है। सबसिडी देना भी उचित है, क्योंकि बहुत सारे ऐसे क्षेत्र हैं, जिनको सरकारी आर्थिक सहायता की सदैव आवश्यकता रहती है। इनमें कृषि क्षेत्र प्रमुख है। उसी तरह दलितों का विकास भी मुख्य है। दूसरी तरफ जब आर्थिक विश्लेषण के पक्ष पर यह देखने को मिलता है कि सभी सत्तापक्ष अपने भविष्य को और मजबूत रखने के लिए अपने लोकलुभावन वादों को अमली जामा पहनाने की कोशिश वित्तीय कर्जों के माध्यम से कर रहे हैं। और तो और, कई महत्त्वपूर्ण योजनाओं जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, बुनियादी ढांचा तथा सेवाओं के विकास में कमी करके बचाई गई रकम को मुफ्त योजनाओं में लगा देते हैं। इस कारण ये मुफ्त की योजनाएं पूर्णत: अनुचित प्रतीत होती हैं।

यह चिंता आरबीआइ द्वारा प्रस्तुत एक रिपोर्ट में भी जाहिर है। वर्तमान परिदृश्य में दस राज्यों की आर्थिक स्थिति डावांडोल है, क्योंकि उनका वित्तीय कर्ज और राज्य के जीडीपी का अनुपात बहुत अधिक बढ़ रहा है। इन सबमें पंजाब की स्थिति विकट है। अन्य राज्यों में राजस्थान, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल, केरल, आंध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश और हरियाणा हैं। इसके अलावा इन राज्यों का (उत्तर प्रदेश और झारखंड के अलावा) वित्तवर्ष 2021-22 में वित्तीय घाटा उनके जीडीपी के तीन प्रतिशत से अधिक था। इन राज्यों में कर्ज पर ब्याज का भुगतान राजस्व का दस प्रतिशत से अधिक रहा है। वर्ष 2019-20 में मात्र ग्यारह राज्य वित्तीय मुनाफे में रहे थे। पंजाब इन दिनों मुफ्त में दी जाने वाली सुविधाओं (बिजली, पानी आदि) के कारण बहुत चर्चा में है। आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2022-23 में मुफ्त में दी जाने वाली विभिन्न प्रकार की सुविधाएं, राज्य के जीडीपी का 25.6 प्रतिशत अनुमानित हैं, तो वहीं यह वित्तीय आय का 17.8 प्रतिशत है तथा कर संग्रहण का 45.4 प्रतिशत अनुमानित है। यह आंकड़ा आर्थिक विकास के मोर्चे पर चिंता और घबराहट का एक सूचक है।

यह लोकलुभावन कदम इसलिए गलत है, क्योंकि इससे आर्थिक नीतियां बुरी तरह प्रभावित होती हैं। इसके विपरीत आज जरूरत है कि सभी राज्य अपने यहां डिजिटल तकनीक और सामाजिक सुविधाओं के बुनियादी ढांचे को तेजी से विकसित करें तथा आर्थिक नीतियों को रोजगारोन्मुख बनाने को सर्वोपरि रखें। मुफ्त बांटने की इन योजनाओं के चलते राज्यों के पूंजीगत खर्च लगातार कम होते जा रहे हैं, जिसके कारण नई संपदा का विकास नहीं हो रहा और आय नहीं बढ़ रही है। यह सोच भविष्य के बहुत बड़ा आर्थिक संकट का द्वार है। आंकड़ों के मुताबिक राज्यों द्वारा दी जाने वाली विभिन्न सबसिडी पर कुल खर्च वित्तवर्ष 2021-22 में 11.2 प्रतिशत से बढ़ा है। पिछले तीन वर्षों में इस पक्ष पर झारखंड, केरल, ओडीÞशा, तेलंगाना और उत्तर प्रदेश मुख्य रहे हैं। रिपोर्ट में प्रस्तुत एक बात और चिंता का सबब है कि पिछले कुछ वर्षों

से राज्यों के संदिग्ध दायित्वों का आर्थिक बोझ लगातार बढ़ता जा रहा है, जिसके अंतर्गत विभिन्न राज्य सरकारी निकाय वित्तीय कर्ज ले रहे हैं, जिनकी गारंटी राज्य सरकारें दे रही हैं। क्रिसिल की ताज रिपोर्ट के अनुसार वित्तवर्ष 2021-22 के अंतर्गत राज्यों के संदिग्ध आर्थिक दायित्व जीडीपी के 4.5 प्रतिशत के बराबर हो गए हैं। इन सबमें मुख्य भूमिका राज्यों के विद्युत विभाग की है, जिनके हिस्से में चालीस प्रतिशत का दायित्व आ रहा है। अन्यों के अंतर्गत सिंचाई, बुनियादी ढांचे का विकास, भोजन और पानी की आपूर्ति के क्षेत्र मुख्य हैं।

कुछ राज्यों का राजकोषीय घाटा लगातार बढ़ता जा रहा है। मतलब स्पष्ट है कि राज्यों की कमाई और ख़र्च के बीच में अंतर लगातार गहरा रहा है। आरबीआइ की रिपोर्ट के अनुसार आंध्र प्रदेश, बिहार, राजस्थान और पंजाब में राजकोषीय घाटा वर्ष 2020-21 में पंद्रहवें वित्त आयोग द्वारा निश्चित किए गए स्तर से ऊपर था। दूसरी तरफ इन राज्यों के स्वयं के कर संग्रहण में भी लगातार कमी हो रही है, जो कि चिंताजनक है। आरबीआइ की रिपोर्ट के आंकड़ों के अनुसार इन दस राज्यों के अंतर्गत बिहार की हालत बहुत चिंताजनक है, क्योंकि इसका खुद का कर संग्रह पिछले पांच वर्षों में कुल कर संग्रह का मात्र 23.5 प्रतिशत है, जबकि केंद्र पर इसकी निर्भरता करीब 75 प्रतिशत है।

आंकड़ों के मुताबिक वर्ष 2017-18 से 2021-22 के अंतर्गत औसतन केंद्रीय हस्तांतरण और अनुदान का प्रतिशत पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, झारखंड और बिहार में पचास प्रतिशत के ऊपर रहा है। इसके अलावा गैर-कर राजस्व का प्रतिशत पिछले पाच वित्तीय वर्षों में सबसे कम पश्चिम बंगाल में रहा है। राजस्थान में 43 प्रतिशत का अंशदान स्वयं के कर संग्रहण का है। करीब 45 प्रतिशत केंद्रीय हस्तांतरण और अनुदान का अंशदान है तथा बाकी 11.4 प्रतिशत गैर-कर राजस्व का योगदान है। इन राज्यों के खर्चों में वेतन, पेंशन और ब्याज का खर्चा बहुत अधिक मात्रा में हो रहा है, जिसके कारण लगातार विकास की योजनाओं पर खर्च कम होता जा रहा है। पिछले दो वित्तवर्ष में लगातार कोरोना की मार भी आर्थिक स्तर पर बुरी पड़ी है। इस बीच अठारह वर्ष बाद पुरानी पेंशन योजना को वापस लाना भी भविष्य के सफल आर्थिक नियोजन पर एक प्रश्न है।

राजनीतिक दलों द्वारा जनता को मुफ्त सुविधाएं देने का कोई संवैधानिक प्रावधान नहीं है। दूरगामी आर्थिक विकास की सोच इस पक्ष में नहीं है। कई राज्यों में यह भी देखने को मिल रहा है कि कर संग्रह बढ़ाने के चक्कर में शराब की बिक्री पर अधिक जोर दिया जा रहा है, क्योंकि आय बढ़ाने के अन्य स्रोत वर्तमान में उनके पास नहीं हैं। लोकलुभावन आर्थिक विकास की इस सोच ने क्या समाज को विनाशकारी राह पर नहीं मोड़ दिया है? क्या अगली पीढ़ी को आर्थिक सुरक्षा मिल पाएगी? कल्याणकारी योजनाओं से संबंधित राज्यों के विभिन्न सरकारी निकाय चाहे, वह परिवहन से संबंधित हो, विद्युत और जल से संबंधित हो, उनके पास इससे संबंधित कोई आर्थिक योजना नहीं होती है। उन्हें यह घाटा प्रत्यक्ष रूप से वहन करना ही पड़ता है। धीरे-धीरे यह आर्थिक घाटा ही उनकी वित्तीय अकुशलता बन जाता है और बाद में सरकार आर्थिक सुधारों के अंतर्गत उनके निजीकरण को प्राथमिकता दे देती है।

अब लगातार विपरीत होती जा रही कुछ राज्यों की आर्थिक स्थिति को तुरंत संभालना होगा। पड़ोसी मुल्क श्रीलंका इस बात का जीता-जागता उदाहरण है कि किस तरह विदेशी कर्ज ने उसे बर्बाद किया। भारत की अर्थव्यवस्था आज वैश्विक स्तर पर अपनी पहचान रखती है, परंतु राज्यों की बिगड़ती आर्थिक स्थिति विदेशी निवेशकों के लिए एक घबराहट का सूचक बनती जा रही है। इसे तुरंत रोकना होगा, वरना इस संकट के प्रभाव मुल्क की आर्थिक स्थिति पर भी जल्द ही दिखने लग जाएंगे।

राष्ट्रीय सहारा

Date:15-07-22

जीवन-मूल्यों का विकास अहम

प्रो. पवन कुमार शर्मा

समाज में जीवनयापन कर रहे अधिकांश मनुष्यों के मानवीय मूल्यों एवं चरित्र का निर्माण उनके द्वारा बचपन में खेले गए खेलों और दादा-दादी, नाना-नानी के किस्सों कहानियों, पारिवारिक पृष्ठभूमि से उत्पन्न वातावरण पर निर्भर करता है। बालमन को आनंदित करने वाले यह खेल यथा लट्टू, फिरकी, कागज की नाव/हवाई जहाज, गुल्लीडंडा, माचिस की खाली डिब्बी इकट्ठी करके सजाना, कंचे खेलना, तितलियों के पीछे भागना, मिट्टी का घरोंदा, स्वांग या रामलीला करना होते थे। यह बाल सुलभ खेल प्रसन्नता का केंद्र होते थे।

प्रसन्नता के यह केंद्र व्यक्तिगत कम सामहिक ज्यादा होते थे। यहां शारीरिक एवं मानसिक कसरत द्वारा एक निर्देशित आचरण व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र इत्यादि को मिलता था। इनमें सामूहिकता एवं समावेशीकरण का तत्व जीवन की विराटता धारण किए हुए थी। परिवार एवं समाज के सभी बच्चे समान रूप से खेलों में भाग लेते थे जहां किसी भी प्रकार का स्तरीकरण छू नहीं सकता था। ऐसे सभी खेल आज प्रायः लुप्त होते जा रहे हैं। आज विघटित होते संयुक्त परिवारों के कारण परिवारों का एक नया स्वरुप न्यूक्लियर परिवार या एकल पैरेंट परिवार हमारे सामने परिवार प्रणाली में परिवर्तन लेकर खड़ा है। आज कामकाजी शहरी जीवन शैली में परिवर्तन का स्वरूप सार्थक दिशा से दिशाहीन होता जा रहा है। कामकाजी एवं आपाधापी वाली शहरी जीवन शैली में माता-पिता के पास समयाभाव की एक लम्बी श्रृंखला है। समयाभाव के कारण ही मातापिता अपने बच्चे को स्मार्टफोन देते हैं, जिसमें कम्प्यूटर आधारित खेल होने लगे हैं या टीवी अथवा इंटरनेट पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों के चैनल्स का रिमोट थमाया जाने लगा है, जिसने खेलों द्वारा बच्चों का होने वाला प्राकृतिक मानसिक विकास समय से पहले ही अवरुद्ध कर दिया है। बच्चे समय से पहले ही परिपक्व, हिंसक, एकाकी एवं अपराधोन्मुखी हो रहे हैं। भाई बहनों में प्राकृतिक या साझा प्रेम के स्थान पर ईर्ष्या पनप रही है। अभी कई स्कूलों में मिडिल क्लास के सहपाठियों के कत्ल में उनके साथियों की भूमिका सामने आई है। बच्चों में प्रतिशोधात्मक एवं हिंसात्मक प्रवृत्तियों ने जगह बना ली है। बच्चे अनियंत्रित होते जा रहे हैं। खिलौना गन हाथ में लेकर असली गन की संस्कृति व उसके मूल्य अपने भीतर उतार रहे हैं। जिन बच्चों के अभिभावक धनाभाव के कारण स्मार्टफोन जैसा खिलौना नहीं दिलवा पाते तो ऐसे कई बच्चे चोरी एवं कई बार अपने ही बूढ़े दादा दादी के कत्ल में शामिल पाए गए हैं। बच्चों की निगाहों में परिवार क्या होता है? उनकी दुनिया क्या होती है? इस तथ्य को 'आपका बंटी' नामक उपन्यास में समझा जा सकता है। बच्चों की घायल होती संवेदना मूल्यों को त्रासदी की यातना में बदल देती है। तिलमिलाहट, गुस्सा और दुख बच्चे के भीतर आकार ग्रहण करने लगते हैं। असमान आर्थिक प्रगति ने भी बच्चों में आपसी सहयोग की भावना को कमजोर किया है। फ्लैटों में पले बढ़े बच्चों में व्याप्त एकाकीपन के कारण उनके बालमन में खेलों से प्रसन्नता प्राप्त नहीं होती है। अलबत्ता उनके अवचेतन में पनपी ईर्ष्या व द्वेष कई बार संघर्ष का कारण बनते हैं। उनके माता पिता में व्याप्त कुंठा बच्चों के झगड़ों में प्रकट होती है। बच्चों का खेलों द्वारा होने वाला समाजीकरण बचपने के साथ समाप्त नहीं होता है अपितु बालमन के चेतन अवचेतन में विकसित जीवन मूल्य कइयों के व्यक्तित्व

पर जीवन भर छाप छोड़े रहते हैं। आज ग्रीष्मावकाश में लोग किसी पहाड़ पर जाकर समय बिताते हैं; उन्हें अपने विधुर पिता या विधवा मां के पास जाने में असुविधा होती है। ऐसी कई घटनाएं देखने सुनने में भी आई हैं कि विदेशों में बसे नौकरी व्यापार करने वाले कई लोग अपने माता पिता की अंत्येष्टि जैसे महत्त्वपूर्ण संस्कार में शामिल नहीं होते हैं। कुछ ऐसी घटनाएं भी घटित हुई हैं, जिनमें दूसरे देशों में बसे नामी गिनामी लोग अपने माता पिता को विदेश ले जाने का झांसा देकर उनका रिहायशी मकान बेचकर बेसहारा छोड़ पूरा पूरी रकम लेकर चले जाते हैं। इन्हीं बातों को 'बगवां' जैसी फिल्म एवं वृद्धाश्रमों की बढ़ती संख्या के द्वारा सहज ही समझा जा सकता है।

हमारी बहुधा अनपढ़ दादी नानियों के किस्से कहानियों में जो यदा कदा धर्म की बातें होती थीं; उनमें मानवता, भाईचारा, पर्यावरण एवं प्रेम का संदेश समाहित रहता था। इसके अलावा नैतिक कर्तव्यों जैसे पशु पक्षी, पेड़, इंसान को पानी देना, भोजन, दवा, सेवा सुश्रुषा इत्यादि का मूल्यांकन यहां कर्तव्यपरायणता के संदर्भ में देखने को मिलता है। प्राकृतिक खेलों के लुप्त होने का कारण बड़े शहरों में मैदान का अभाव एवं समाज में बच्चों के प्रति बढ़ती आपराधिक घटनाओं यथा अपहरण इत्यादि का डर भी सम्मिलित है। अतः आवश्यकता है कि बच्चों को खेलों का सकारात्मक वातावरण उपलब्ध कराया जाए, जिससे उनके बालमन को असमय दूषित होने से बचाया जा सके। यह दोहराने की आवश्यकता नहीं है कि आज के बच्चे ही कल का भविष्य हैं। हमें अपनी सामाजिक अवस्था के अनुरूप ही बच्चों में जीवन मूल्यों का विकास करना होगा।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:15-07-22

शब्द संसदीय

संपादकीय

संसद या विधानमंडलों में समय-समय पर अनेक शब्दों को असंसदीय श्रेणी में डाला जाता रहा है, ताकि सदन में भाषा की शुचिता बने रहे। इसके पीछे ध्येय यही होता है कि सदन में भाषा मर्यादित रहे और ओछी भाषा का उपयोग कोई न करे। ऐसी ही कवायद के तहत लोकसभा सचिवालय ने असंसदीय शब्द 2021 शीर्षक के तहत ऐसे शब्दों और वाक्यों का नया संकलन तैयार किया है, जिनको 'असंसदीय अभिव्यक्ति' की श्रेणी में रखा गया है। इसका मतलब यह हुआ कि सांसद इन शब्दों के इस्तेमाल से बचेंगे और अगर ऐसा कोई शब्द उनके मुंह से निकल गया, तो सदन की दर्ज कार्यवाही से उसका लोप कर दिया जाएगा। आमतौर पर सांसद असंसदीय सूची में दर्ज शब्दों के इस्तेमाल से बचते ही हैं, लेकिन ऐसे शब्दों का इस्तेमाल सदन में पैदा माहौल की वजह से भी होता है। असंसदीय शब्दों के इस्तेमाल से बचने के लिए सबसे जरूरी है कि अच्छे परिवेश में चर्चा हो, तो शब्दों की शुद्धता और शुचिता भी कायम रहेगी।

खैर, जिन शब्दों को इस बार असंसदीय करार दिया गया है, उनमें से कुछ शब्द पहले ही कुछ राज्य विधानमंडलों में असंसदीय करार दिए गए थे। जैसे, छत्तीसगढ़ विधानसभा की कार्यवाही से हटाए गए कुछ शब्द हैं, बॉब कट हेयर, गरियाना, अंट-शंट, उचक्के, उल्टा चोर कोतवाल को डांटे, इन शब्दों का इस्तेमाल अब संसद में भी नहीं हो सकेगा।

राजस्थान विधानमंडल से कुछ शब्द लिए गए हैं, कांव-कांव करना, तलवे चाटना और तड़ीपार। झारखंड विधानसभा में कई घाट का पानी पीना मुहावरा असंसदीय है, तो उसे संसद की स्याह सूची में शामिल कर लिया गया है। लोकसभा अध्यक्ष को यह अधिकार है कि वह ऐसी सूची जारी कर सकते हैं। ध्यान रहे, लोकसभा में कामकाज की प्रक्रिया एवं आचार के नियम 380 के मुताबिक, अगर अध्यक्ष को लगता है कि चर्चा के दौरान अपमानजनक या असंसदीय, अभद्र या असंवेदनशील शब्दों का इस्तेमाल किया गया है, तो वे सदन की कार्यवाही से उन्हें हटाने का आदेश दे सकते हैं। शब्द ही नहीं, कुछ वाक्यों को भी असंसदीय करार दिया गया है। इसके बाद वाकई सांसदों को अध्ययन करना पडेगा और बहुत संभलकर अभिव्यक्ति करनी पड़ेगी। आलोचना के लिए संसदीय शब्द चुनने पड़ेंगे। आलोचना के कुछ प्रचलित शब्दों या वाक्यों के घटने या हटने से सत्ता पक्ष और कभी विपक्ष, दोनों को असुविधा भी होगी।

ऐसे शब्दों की सूची लंबी है, जिन्हें असंसदीय करार दिया गया है। क्या असंसदीय करार दिए गए शब्दों के विकल्प भी बताए गए हैं? वैसे शब्दों की शुचिता और सूची पर भी संसद में बहस हो सकती है, उससे यह देश जान पाएगा कि किसी शब्द को आखिर असंसदीय क्यों करार दिया जा रहा है? यह कोई छिपी बात नहीं है कि राजनीति वैसे भी गिने-चुने या घिसे-पिटे सौ-दो सौ शब्दों का ही इस्तेमाल करती है। संसद में भाषाविदों की कमी होती जा रही है? क्या इन शब्दों के असंसदीय करार दिए जाने के बाद सदन का कामकाज और सुधर जाएगा? क्या सभी सांसद इस सूची की पालना करेंगे? गौर कीजिए, तृणमूल कांग्रेस के सांसद डेरेक ओ ब्रायन ने करारा हमला बोलते हुए कह दिया है कि मैं इन शब्दों का इस्तेमाल करूंगा, चाहे मुझे निलंबित कर दिया जाए। मतलब, संसद में ही नहीं, कुछ विधानसभाओं में भी ऐसे शब्दों के इस्तेमाल की संभावना रहेगी, जिन्हेंअसंसदीय करार दिया गया है। अच्छा होता, यदि इस मोर्चे पर आम सहमति बन जाती।

Date:15-07-22

बराबरी पर आएंगी महिलाएं, तो तेज होगी आर्थिक प्रगति

ऋतु खण्डूड़ी भूषण, (अध्यक्ष, उत्तराखंड विधानसभा)

महिलाएं भारत के विकास और संपन्नता में बडे पैमाने पर योगदान की दिशा में बढ़ रही हैं। देश में कामकाजी उम्र की लगभग 43.2 करोड़ महिलाएं हैं, जिनमें से 34.3 करोड़ असंगठित क्षेत्र में कार्यरत हैं। मैकिन्से ग्लोबल इंस्टीट्यूट के अनुसार, महिलाओं को समान अवसर देकर भारत 2025 तक अपने सकल घरेलू उत्पाद में 770 अरब अमेरिकी डॉलर जोड़ सकता है। हालांकि, जीडीपी में महिलाओं का वर्तमान योगदान 18 प्रतिशत है। अभी भारत में बमुश्किल 10 प्रतिशत उद्यमों या स्टार्टअप का नेतृत्व महिलाएं करती हैं। महिला उद्यमियों को मानसिक व आर्थिक रूप से अधिक मदद देना समय की मांग है। नीति आयोग के पिछले वर्ष के तथ्यों और आंकड़ों पर ध्यान दें, तो स्पष्ट दिखता है कि स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा, पोषण, रोजगार से लेकर संपत्ति के स्वामित्व तक जीवन के हरेक क्षेत्र में महिलाओं को असमानता झेलनी पड़ती है। जब फैसला लेने की बात आती है, तब वे पीछे रह जाती हैं। यह असमानता हर क्षेत्र में है। 2011 की जनगणना के अनुसार, देश में महिला साक्षरता दर 65 प्रतिशत है, वहीं पुरुषों में साक्षारता दर 82 प्रतिशत है। अक्सर जब हम लैंगिक मुद्दों पर चर्चा करते हैं, तब भूल जाते हैं कि महिला, पुरुषों के अलावा हमारे बीच किन्नर समुदाय भी है, जिसे समाजिक न्याय की जरूरत है। किन्नर पहले समाज में सम्मानित सदस्य की तरह रहते थे, पर फिल्मों व अन्य

वजहों से उनकी छवि खराब हुई। बदले दौर में हमें महिलाओं को ही नहीं, किन्नर समुदाय को भी बराबरी का हक देना होगा।

सतत विकास लक्ष्य 2030 की लक्ष्य संख्या पांच का उद्देश्य सभी प्रकार के भेदभाव, हिंसा और गलत प्रथाओं को समाप्त कर महिलाओं की अवैतनिक देखभाल और घरेलू काम को महत्व देकर लैंगिक समानता प्राप्त करना है। यह स्त्रियों के लिए राजनीतिक, आर्थिक और सार्वजनिक जीवन में निर्णय लेने के सभी स्तरों पर प्रभावी भागीदारी व समान अवसरों पर भी विचार करता है। जब लैंगिक समानता और सतत विकास लक्ष्यों (एसडीजी) को प्राप्त करने की बात आती है, तो केरल व सिक्किम को छोड़ लगभग सभी भारतीय राज्य रेड जोन में हैं और उन्होंने सौ में से सिर्फ पचास या उससे कम स्कोर किया है। राज्यों के प्रदर्शन को मापने के लिए नीति आयोग ने छह मानदंडों पर विचार किया है, जिसमें जन्म के समय लिंग अनुपात (प्रति 1,000 पुरुष पर महिला), औसत मजदूरी का अनुपात, 15-49 वर्ष की आयु की विवाहित महिलाओं का प्रतिशत, जिन्होंने कभी पति की हिंसा का अनुभव किया है, राज्य विधानसभा के आम चुनाव में महिलाओं द्वारा जीती गई सीटों का प्रतिशत, महिला श्रम शक्ति भागीदारी दर का अनुपात और परिवार नियोजन के आधुनिक तरीकों का उपयोग करते हुए 15-49 वर्ष के आयु वर्ग में महिलाओं का प्रतिशत। हर महिला अपनी पूरी क्षमता तक पहुंचने की हकदार है, पर उसके जीवन में लैंगिक असमानताएं इस वास्तविकता में बाधा डालती हैं। जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है, असमानता भी बढ़ती है, इसके परिणामस्वरूप हम देखते हैं कि भारत में संगठित क्षेत्र में केवल एक चौथाई महिलाएं हैं। जन्म के समय लिंगानुपात के मामले में उत्तराखंड का प्रदर्शन चिंतनीय है। वर्ष 2017-19 के बीच राज्य का लिंगानुपात 848 था, वहीं साल 2019-21 में यह घटकर 840 हो गया है, जबकि राष्ट्रीय औसत 899 है, राज्य के लिए यह एक गंभीर और विचार योग्य विषय है।

सरकार ने 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ' की दिशा में अनेक नीतिगत बदलाव किए हैं। इससे भी लिंगानुपात पर असर पड़ रहा है। वर्ष 2021 में पहली बार भारत में प्रति हजार पुरुष पर 1,020 महिला होने का आंकड़ा आया, तो यह गौरव का क्षण था कि हम सामाजिक रूप से अब बेटियों को स्वीकार करने लगे हैं। उम्मीद है, जल्द ही केंद्र व राज्य सरकारें लैंगिक असमानता जैसी चुनौतियों पर भी नीतिगत निर्णय लेंगी। अब सतत विकास लक्ष्य को प्राप्त करना और जरूरी हो गया है।

लैंगिक समानता से जुड़े लक्ष्यों को पाने के लिए नियमित रूप से कानूनी, आर्थिक और सामाजिक स्तर पर निगरानी की जरूरत है। लैंगिक समानता प्राप्त करते हुए ही भारत आर्थिक व सामाजिक रूप से सफल होगा।